ऐसे हों हमारे शिक्षक

अरुण कुमार वर्मा*

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। शिक्षा जगत भी इससे अछूता नहीं है। शिक्षा प्रणाली में भी समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है। प्राचीनकाल में जहाँ अधिगम प्रक्रिया विषय-केंद्रित थी वहीं वर्तमान में बाल-केंद्रित हो गई है। शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षण के मानक भी बदले हैं। शिक्षण का सीधा संबंध शिक्षक से है, इसलिए नयी शिक्षा प्रणाली शिक्षक में भी परिवर्तन की अपेक्षा रखती है। भारत में कुछ शिक्षण संस्थाओं को छोड़ दिया जाय तो ज़्यादातर शिक्षक पारंपरिक शिक्षण पद्धति पर शिक्षण कार्य कर रहे हैं। ऐसे में वर्तमान शिक्षा प्रणाली पाठ्यक्रम, शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य समन्वय का अभाव होना स्वाभाविक है। वर्तमान तकनीकी युग में पाठ्यक्रम और शिक्षार्थी, शिक्षक से जैसी अपेक्षा रखते हैं शिक्षक उसकी पूर्ति नहीं कर पाता है। विषय विशेषज्ञ होने पर भी नये परिवेश के साथ जुड़ नहीं पाता है जिसके कारण बालक पर शिक्षा का एकांगी प्रभाव ही पड़ता है। वह विषय की जानकारी तो अर्जित करता है लेकिन नैतिक मूल्य अर्जित नहीं कर पाता है। इसका प्रभाव वर्तमान में देखने को मिल रहा है। शिक्षा जगत की नीति नियामक संस्थाओं की नीतियों का अनुसरण करते हुए वर्तमान परिवेश के साथ अप टू डेट रह कर ही शिक्षक की वास्तविक परिकल्पना को प्राप्त किया जा सकता है। इस आलेख के माध्यम से वर्तमान शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच समन्वय के अभाव के कारणों को तलाशते हुए शिक्षक के उत्तरदायित्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है जिससे शिक्षण के वर्तमान मानक को प्राप्त करने में सहायता मिलेगी और शिक्षण कार्य प्रभावी हो सकेगा।

वर्तमान युग में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नित नये अनुसंधानों ने मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। जिसके परिणामस्वरूप पुरानी मान्यतायें एवं रूढ़ियाँ टूट रहीं हैं, और नये-नये प्रयोगों से नयी मान्यताएँ निर्मित हो रहीं हैं। शिक्षा का क्षेत्र भी इस परिवर्तन से अछूता कैसे रह सकता है? शिक्षा का यह आधारभूत परिवर्तन बालकों के सर्वांगीण विकास को लेकर गतिशील है। इस बदलते परिवेश में शिक्षा नीतियाँ, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण के मानक भी बदले हैं।

* *पी.जी.टी., (हिंदी)*, जवाहर नवोदय विद्यालय, सिरमौर, जिला रीवाँ (म.प्र.)-486448

वर्तमान के साथ सामंजस्य के लिए शिक्षक में भी परिवर्तन अपेक्षित है।

शिक्षक की भूमिका को सही अर्थों में समझने के लिए भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर एक विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक है। वैदिक कालीन शिक्षा में अध्यापक सर्वोपरि था। शिक्षा शिक्षक के इर्द-गिर्द घूमती थी। मध्य काल में भी शिक्षा व्यवस्था में बहुत परिवर्तन नहीं आया। गुरुकुल के स्थान पर मदरसे या मकतब में शिक्षण कार्य चलता था। शिक्षा जगत में बड़ा परिवर्तन आधुनिक काल में देखने को मिलता है। उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण और अंक देने की प्रणाली का विकास अंग्रेज़ी शिक्षा नीति से शुरू हुआ। स्वतंत्र भारत में शिक्षा के विकास में नये युग का सूत्रपात हुआ। वास्तव में भारतीय शिक्षा के इतिहास में शिक्षा तथा इसकी समस्याओं पर इतना अधिक ध्यान पहले कभी नहीं दिया गया था जितना ध्यान स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत दिया गया।

एक समय था जब शिक्षा में समाज की आवश्यकताओं पर ज़ोर दिया जाता था और उन्हीं के अनुसार बालकों को शिक्षा दी जाती थी। बालक को दुष्प्रवृत्तियों का भंडार माना जाता था, और शिक्षा का उद्देश्य बालक की दुष्प्रवृत्तियों को दूर करना था। शिक्षा में बालक को स्थान मिलने में बहुत लंबा समय तय करना पड़ा। बाल शिक्षा के आदर्श को पहली बार '*रूसो*' ने अपनी पुस्तक ''*इमील*'' में स्थापित किया है। इस क्रम में पेस्टालाजी, फ्रोबेल, जॉन डी.वी तथा मैडम माण्टेसरी ने बालक की स्वतंत्रता पर बल दिया। जॉन डी.वी ने लिखा है, ''बालक को निरंतर ऐसे अवसर देने चाहिए जिसमें वह व्यक्तिगत आकांक्षाओं की तृप्ति का योग कर सके और अपनी सामर्थ्य, अपनी योग्यता तथा अपनी रुचि के अनुकूल विकास का क्रम स्थिर कर सके।''

भारतीय शिक्षा जगत में भी 'बाल-केंद्रित शिक्षा' का प्रसार होने लगा। इस शिक्षा प्रणाली के उन्नायकों में गिजुभाई बधेका अग्रणी थे। वे लिखते हैं, ''जिसे हम बालकों का ऊधम मचाना कहते हैं वह अधिकतर तो हमारी शिक्षा पद्धति के प्रति बालक का व्यक्तिगत विद्रोह होता है।'' शिक्षा में बालक को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होने से शिक्षण के मानक में भी काया पलट हुआ। अब शिक्षक का कार्य प्रेरणा, निर्देशन और निरीक्षण करना हो गया है। बाल-केंद्रित शिक्षा में शिक्षक की भूमिका सहयोगी की है। उसे विषय-वस्तु के साथ साथ बालक का ज्ञान होना भी आवश्यक है। उससे अपेक्षा की जाती है कि वह बालक की व्यक्तिगत विशेषताओं को समझ कर उनका उपयोग करे और प्रत्येक बालक की निजी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उसे सीखने के लिए मार्गदर्शन देता रहे।

आज भी अधिकतर अधिगम प्रक्रिया में सहयोग से ज़्यादा सिखाने पर अधिक ज़ोर दिया जा रहा है जबकि शिक्षण प्रभावी तब होता है जब शिक्षक बच्चे को मात्र ग्रहणकर्ता न मान कर एक सृजनशील प्राणी मानता है और सीखने-सिखाने की प्रक्रिया मात्र जानकारी देने से भिन्न एक सहायक की भूमिका में सामने आकर बच्चों की रचनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए तरह-तरह के अवसर प्रदान करता है। ऐसे में अधिगम प्रक्रिया आनंददायक बन जाती है और बच्चे स्वयं ज्ञान का सृजन करते हैं।

अनुसंधान बताते हैं कि बच्चा जन्म से ही बहुत जिज्ञासु होता है। बड़ों से पूछ कर, बाहरी

परिवेश से देख कर, छूकर और बोध के द्वारा बहुत सारी चीज़ों को जान लेता है। बच्चों के इस बाहरी ज्ञान को स्कूली ज्ञान से जोड़ कर जब शिक्षक शिक्षण कार्य करता है तब शिक्षा जीवन से जुड़कर उपयोगी और सरस बन जाती है। बालक जब स्कूल आता है तब नये पाठ्यक्रम के प्रति उसके मन में जिज्ञासा और उत्साह होता है। यदि शिक्षक पुरानी परंपराओं और रूढ़ियों से ग्रसित है तो बालक विद्यालयी शिक्षा से विमुख होकर कुंठा का शिकार हो जाता है और अनुशासनहीनता की ओर अग्रसर हो जाता है। वर्तमान में यह स्थिति स्कूलों में देखने को मिल रही है।

वर्तमान शिक्षा में पाठ्यक्रम नयी शिक्षा प्रणाली को ध्यान में रख कर बनाया जाता है जिसमें बालक और उसका परिवेश महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पाठ्यक्रम और बच्चों के परिवेशगत ज्ञान के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए शिक्षक से अपेक्षा की जाती है कि वह नयी शिक्षा नीति, नई शिक्षण तकनीकी और शिक्षा के क्षेत्र में नये अनुसंधान से जुड़ कर पाठ्यक्रम के प्रति रुचि विकसित करते हुए बच्चों को सीखने के लिए प्रोत्साहित करे। शिक्षा में आये बदलाव को समझे और उसे आत्मसात् कर स्वयं गतिशील रहकर कक्षा में बच्चों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास करता रहे।

शिक्षक कैसे हों? यह प्रश्न शिक्षक जाति की अस्मिता का प्रश्न है। शिक्षक के उत्तरदायित्वों को टटोलने का प्रश्न है। शिक्षक सामाजिक अभियंता एवं राष्ट्र निर्माता के रूप में देखा जाता है। इसलिए शिक्षक का दायित्व अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि वह समाज की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं, आकांक्षाओं, आदर्शों एवं मूल्यों को महसूस करते हुये राष्ट्रीय मूल्य, सामाजिक मूल्य एवं सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन के प्रति सतत् जागरूक रहे। वह भावी नागरिकों में ऐसे मूल्य सृजित करने का प्रयास करं जिससे राष्ट्रीय एवं विश्व शांति में अभिवृद्धि हो सके। यह तभी संभव है जब शिक्षक में वह मूल्य सृजित होगा।

वर्तमान संदर्भ में शिक्षक की बदलती भूमिका पर ज़ोर देते हुए *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005* में कहा गया है कि शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम में बदलाव लाने की ज़रूरत है और शिक्षक की शिक्षा को स्कूली व्यवस्था की उभरती माँगों के प्रति अधिक संवेदनशील होना चाहिए। उसे शिक्षकों को इस प्रकार तैयार करना चाहिए जिससे वे निम्न रूप में अपनी भूमिका बखूबी निभा सकें–

- उनको उत्साहवर्धक, सहयोगी और मानवीय होना चाहिए जिससे विद्यार्थी अपनी संभावनाओं का पूर्ण विकास कर ज़िम्मेदार नागरिक के रूप में अपनी भूमिका निभाएँ, और
- ऐसे व्यक्तियों के समूह का सक्रिय सदस्य बनें, जो लगातार सामाजिक और विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सजगता से पाठ्यचर्या सुधार में रत हों।

शिक्षकों के लिए आवश्यक तैयारी

- शिक्षकों की ऐसी तैयारी ज़रूरी है कि वे बच्चों का खयाल कर सकें और उनके साथ रहना पसंद करें।
- सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संदर्भों में बच्चों को समझ सकें।
- ग्रहणशील और निरंतर सिखने वाले हों।

- शिक्षा को अपने व्यक्तिगत अनुभवों की सार्थकता की खोज के रूप में देखें तथा ज्ञान निर्माण को मननशील अधिगम की लगातार उभरती प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करें।
- ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों के बाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर साझा संदर्भों और व्यक्तिगत संदर्भों में उसके निर्माण को देखें।
- समाज के प्रति अपना दायित्व समझें और, बेहतर विश्व के लिए काम करें।
- उत्पादक कार्य के महत्त्व को समझें तथा कक्षा के बाहर और अंदर व्यावहारिक अनुभव देने के लिए कार्य को शिक्षण का माध्यम बनाएँ।
- पाठ्यचर्या की रूपरेखा, उसके नीतिगत-निहितार्थ एवं पाठों का विश्लेषण करें *(एन.सी.ई.आर.टी., राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, पृ. 94)।*

आज सामाजिक संरचना में कर्मशीलता के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो गया है। व्यवसाय में दक्षता के लिए कर्मशील होना ज़रूरी है। जिस प्रकार वकील डाक्टर या कारीगर अपने व्यवसाय का ज्ञान अर्जित किए बिना अपने कार्य में दक्षता हासिल नहीं कर सकता, उसी तरह शिक्षक से भी अपेक्षा की जाती है कि वह व्यावसायिक कुशलता के प्रति प्रगतिशील हो। शिक्षक के लिए सिर्फ़ विषय ज्ञान ही शिक्षण के लिए पर्याप्त नहीं है बल्कि शिक्षण कौशल विकसित करना भी ज़रूरी है जिसके द्वारा वह ज्ञान का नवीनीकरण करते हुए शिक्षण में नवाचार, प्रभावी संप्रेषण, शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे नये-नये शोधों का अध्ययन कर सकेगा और नवीन शिक्षण विधियों का समुचित प्रयोग करते हुए आत्मिक विकास के साथ-साथ शिक्षार्थियों को अधिगम में सहायता कर सकेगा और उन्हें कर्मशील एवं उद्यमी नागरिक बनाने के अवसर प्रदान कर सकेगा ।

शिक्षा के वर्तमान परिवेश में शिक्षक की भूमिका पर एक नज़र डाली जाए तो बहुतायत शिक्षक आज भी परंपरागत शिक्षण प्रकिया द्वारा अध्यापन कार्य कर रहे हैं। व्यक्तिगत कारणों के साथ और ढेर सारे कारण हो सकते हैं परंतु व्यवसाय के प्रति उदासीनता के कारण शिक्षार्थी की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं हो पा रही है जिससे शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य सामंजस्य स्थापित नहीं हो पा रहा है। इसकी परिणति आज के शिक्षक-शिक्षार्थी संबंधों में परिलक्षित हो रही है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली बालकों के स्वतंत्र सीखने पर बल देती है। बच्चों की सीखने की स्वतंत्र प्रक्रिया में शिक्षक की नज़र बहुत पैनी होनी चाहिए। उसे बालकों की व्यक्तिगत विशेषताओं को ध्यान में रखते हुये बालक को किसी स्वस्थ समूह का सदस्य बनने में सहायता करनी चाहिए और सामूहिक अधिगम को बढ़ावा देना चाहिए। आज भी स्कूल प्रतिभावान बच्चों पर अधिक ध्यान देते हैं। कक्षा में शिक्षक का ध्यान अच्छे बच्चों या औसत बच्चों तक सीमित रह जाता है। कमज़ोर छात्र कक्षा में सामान्यत: उपेक्षित ही रहता है जबकि बाल-केंद्रित शिक्षा में हर बालक महत्वपूर्ण है। हर बच्चे की परिवेशगत परिस्थितियाँ अलग होती हैं। शिक्षक जब यथासंभव परिवेशगत परिस्थितियों को ध्यान में रख कर सीखने में छात्रों को शिक्षण देता है तब हर छात्र की सीखने की प्रक्रिया में वृद्धि होती है।

विषय ज्ञान, सूचना एवं तकनीकी, संप्रेषण और शिक्षण तकनीकी के अलावा शिक्षक से

प्रेम, सेवा, साहस और नैतिक चरित्र की अपेक्षा की जाती है। शिक्षक को छात्रों से प्रेम करना चाहिए और आपस में प्रेम करना सिखाना चाहिए। शिक्षक की भूमिका को निर्धारित करते हुए महान नाटककार कालिदास लिखते हैं, ''जो अध्यापक जीविकोपार्जन के लिए विद्या पढ़ाता है वह पण्डित नहीं ज्ञान बेचने वाला दुकानदार कहा जाता है।''

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षक वह है जो विषयवस्तु का ज्ञाता, बालमन का पारखी, नयी शिक्षा प्रणाली और नये शोध के प्रति उत्सुक, शिक्षण तकनीकी में नवाचार करते हुये बहुविध एवं सतत् शिक्षण पर बल, सरल, सहज, साहसी एवं सामाजिक कार्यकर्ता हो। वह अध्ययनशील, प्रगतिशील, शिक्षार्थी का सच्चा मित्र एवं सहयोगी हो और आधुनिक मूल्यों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए व्यवसाय के प्रति निष्ठावान हो। यह कार्य कठिन ज़रूर है पर असाध्य नहीं। इस पथ पर अग्रसरित होकर हर शिक्षक व्यावसायिक प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकता है।